शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 जनवरी 2014

गोविन्द मिश्र के कथा साहित्य में आर्थिक चेतना

सरिता देवी शुक्ला
शोधार्थी, हिंदी विभाग
वनस्थली विद्यापीठ
राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

'अर्थ' मनुष्य जीवन में सम्पूर्ण बाह्य आवश्यकताओं एवं क्रिया कलापों पर अपना सर्वाधिक प्रभाव डालता है। इसके अभाव में व्यक्ति और समाज का विकास सम्भव नहीं है। आज सम्पूर्ण सामाजिक जीवन अर्थशक्ति से ही परिचालित होता है और समाज की समस्त जीवन प्रक्रिया उसके आर्थिक ढाँचे पर ही आधारित होती है तो ऐसे में सामाजिक जीवन को सुचारू एवं व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए यह बहुत जरूरी है कि अर्थ का समान रूप से वितरण हो, क्योंकि आर्थिक विषमता अनेक सामाजिक विसंगतियों को जन्म देती है। समाज का यूँ वर्गों में बँट जाना, इसका मुख्य कारण भी पूँजीवाद ही है। पूँजीपति निम्न या सर्वहारा वर्ग का शोषण इसलिए कर पाता है क्योंकि समूची उत्पादन व्यवस्था पर उसका एकाधिपत्य होता है। एक जागरूक साहित्यकार को युगीन आर्थिक विषमताएँ आन्दोलित न करे, यह सम्भव ही नहीं। प्रस्तुत शोध पत्र में गोविन्द मिश्र के साहित्य में आर्थिक चिंतन को प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना

हिन्दी के प्रबुद्ध साहित्यकारों ने सर्वहारा वर्ग की दुर्दशा को बड़ी पीड़ा के साथ अनुभव किया है और इन्हीं जीवन्त तस्वीरों को अपने कथा साहित्य में प्रस्तुत भी किया है। गोविन्द मिश्र का नाम भी इस दृष्टि से अपवाद नहीं है। उन्होंने न सिर्फ आर्थिक वैषम्य के शिकार सर्वहारा वर्ग के कारूणिक चित्र अपने साहित्य में उभारे हैं, बल्कि इसी परिप्रेक्ष्य में वर्ग विषमता की विभीषिका और ग्रामीण समाज में घुटता हुआ जन-जीवन उनके साहित्य में मूर्त रूप में चित्रित हुआ है।

समाज में आर्थिक शोषण का मुख्य कारण अशिक्षा को मानते हुए गोविन्द मिश्र जी समाज के हर एक व्यक्ति (पुरूष एवं नारी) के लिए शिक्षा की अनिवार्यता पर जोर देते हैं, ताकि इसके प्रकाश में व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होकर अपनी आगे की लड़ाई स्वयं लड़ सके। अपने अधिकारों से जागरूक होकर अपना शोषण होने से रोक सके।

अर्थ के अभाव में या कहें आर्थिक मजबूरी के समक्ष मानव अपने आप को विवश पाता है एवं शोषण का शिकार बनता है। किसी भी देश की अर्थ व्यवस्था सशक्त या सुदृढ़ तभी हो सकती है, जब वह सन्तुलित रहे और इसके लिए यह बेहद जरूरी है कि ''माँग पूर्ति और मूल्यों के

बीच सामंजस्य बना रहे। यदि इन तीनों के तारतम्य में असंतुलन होता है तो कोई भी अर्थ व्यवस्था चरमरा सकती है।" उदाहरण के तौर पर अगर पूर्ति की कमी हो जाती है तो 'माँग' निश्चित रूप से बढ़गी। अब अगर माँग बढ़ती है तो मूल्यों का बढ़ जाना स्वाभाविक है। मूल्य के बढ़ जाने पर लोगो की क्रय शक्ति कम हो जाती है और तब लोगों में उपभोग की क्षमता स्वतः घट जाती है। ऐसी स्थिति में लोगों में अभावों की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी और तब लोग आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के बजाय विपन्न हो जायेंगे, जिससे जनता में क्षोभ और असंतोष क्रान्ति का रूप ले लेते है एवं अराजकता उत्पन्न हो जाती है।

अतः कुल मिलाकर यह बात स्पष्ट हुई कि 'माँग पूर्ति और मूल्यों का सामंजस्य गड़बड़ाना नहीं चाहिए। इन तीनों के तारतम्य में कमी देश को बंडे आर्थिक संकट में डाल देती है। जिस अर्थ व्यवस्था से देश के सामान्य लोगों का आर्थिक कल्याण नहीं हो सकता, उसका वास्तविक रूप से कोई औचित्य नहीं होता। अतः इस औचित्य को सार्थकता प्रदान करने हेतु हमारे देश में अर्थ व्यवस्था को नियोजित किया गया है।

एक अर्थशास्त्री विद्वान कूरियन के अनुसार-"अर्थ व्यवस्था एक समाजिक संस्था है जिसका नियंत्रण मनुष्य करते हैं। वह अपने ही अपरिवर्तनशील सिद्वान्त से चलने वाला स्वचालित यन्त्र नहीं है।"

अतः अर्थ के प्रति जनसाधारण का आकर्षण निरन्तर बढ़ रहा है। आज हर क्षेत्र में अर्थ तन्त्र घुसकर कुंडली लगाकर बैठ गया है। ऐसे अर्थ प्रधान युग और समाज की नब्ज को गोविन्द मिश्र जी ने एक अनुभवी वैद्य की तरह पकड़ा है और आर्थिक क्षेत्र में चेतना के स्पन्दनों की पड़ताल की है। आज अर्थ के अभाव में व्यक्ति के आदर्श उसकी अस्मिता, उसका स्वाभिमान कैसे जूझ रहे है, इस त्रासद विडंबना के दर्शन हमें सहज ही गोविन्द मिश्र के कथा साहित्य में हो जाते हैं।

गोविन्द मिश्र के साहित्य में आर्थिक चेतना

पूँजीपतियों और सर्वहारा वर्ग के बीच फैली आर्थिक विषमता की लगातार चौडी होती खाई और प्रतिकार स्वरूप सर्वहारा वर्ग द्वारा छेडे गये वर्ग संघर्ष को गोविन्द मिश्र ने अपने कथा साहित्य में पर्याप्त स्थान दिया है। इन्होंने इस बात पर भी समाज का ध्यान केन्द्रित किया है कि अब न तो आर्थिक रूप से स्वावलंबी मानव के वर्चस्व को नकारा जा सकता है और न ही स्वावलम्बी मनुष्य की व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना को ही अधिक दिनों तक दबाया जा सकता है। उनका मानना है कि मानव का आर्थिक स्वावलंबन उसकी व्यक्ति स्वतंत्रता का उन्मेष साबित हुआ है। इसी क्रम में बेहतर अर्थोपार्जन की तलाश में गाँव से शहरों की ओर ग्रामीणों के पलायन को भी एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में लेखक ने अपने साहित्य में चित्रित किया है।

अर्थ से ही मानव जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में अर्थ विशिष्ट भूमिका निभाता है। अर्थ के अभाव में मानव स्वार्थी बन जाता है। गोविन्द मिश्र ने अपने साहित्य में इन समस्याओं को भरपूर मात्रा में उभारा है। इन्होंने अपने साहित्य में आर्थिक

संघर्ष जैसी विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है जैसे बेरोजगारी, गरीबी, महँगाई, अशिक्षा आदि।

बेरोजगारी समाज के लिए अभिशाप है, जिससे आर्थिक स्थिति बिगड़ती है। इसके कारण व्यक्तिगत जीवन में अस्थिरता तथा असन्तोष व्याप्त रहता है। शिक्षा के विकास के साथ शिक्षित समुदाय बेरोजगारी के नागपाश में जकड़ा सर्वाधिक यन्त्रणाएँ भोग रहा है। शिक्षित युवक अहंवादी मनोवृति के होते है। अहंवादी मनोवृति के रहते वह परिस्थितियों से समझौता करने को भी तैयार नहीं। पाँच आंगनों वाला घर गोविन्द मिश्र की एक ऐसी रचना है जिसमें सन् 1940 से 1990 तक की आर्थिक स्थितियों की अभिव्यक्ति संवेदना संपृक्ति के साथ हुई है। भौतिक संघर्ष की निरर्थकता से बोखलाये हुए 'एक बूँद उलझी' के बेरोजगार नायक के शब्दों में भौतिक प्रगति की सीमाएँ बड़ी आद्र्रता से अभिव्यक्त होती है। नायक अपने मित्र से कह रहा है ''हाँ, कुछ छिन गया .... जो बचा, वह मना हो गया, तुम अच्छे रहे यार..... ऐसे ही सीधे-सादे रहना, ये कुदें...... ऊँची, लम्बी......... कुछ नहीं मिलता।''1

अतः गोविन्द मिश्र ने अपने साहित्य में बढ़ती बेरोजगारी के जीवन्त रूप को दर्शाया है और आज भी युवा वर्ग इस बेरोजगारी की समस्या से जूझ रहा है।

अर्थ पर ही व्यक्ति की धुरी घूमती है, परन्तु जब आधार ही कमजोर होगा तो सन्तुलन की आशा करना व्यर्थ है। मानव के सम्मुख सबसे प्रमुख समस्या अर्थ है जिसकी अनुपस्थितियों में व्यक्ति को दरिद्रतापूर्ण निम्न जीवन स्तर यापन करने के लिए विवश होना पड़ता है। समाज में पूँजीपतियों के शोषण तथा धन लोलुपता की प्रवृत्ति ने मानव को सबसे अधिक प्रभावित किया है। धन के अभाव में मानव को अपने ऐशो-आराम की वस्तुओं घर, बंगला, जेवरात तथा यहाँ तक कि भगवान में आस्था वाली प्रतिमा की भी कीमत लगानी पड़ती है। गोविन्द मिश्र के साहित्य में धन के अभाव से जूझते व्यक्ति का चित्रांकन कुशलता के साथ हुआ है।

निर्धनता समाज के लिए अभिशाप है। आर्थिक अभाव में व्यक्ति दो वक्त की रोटी जुटा पाने में असमर्थ रहता है। 'लाल पीली जमीन' उपन्यास का नायक 'केशव' भी इसी गरीबी के अभिशाप का शिकार है ''पूरे उपन्यास में ही उसकी विवशता का लाचारी का भय का दर्दनाक स्वर गूँजता रहता है।''2

''केशव के शब्दों में - मेरे कमजोर माता-पिता बड़े जैसे पढाकू लड़के, गृहस्थ धर्म को निबाहने वाले स्त्री-पुरूष सब मजबूर हैं, असहाय और आतंकित हैं एवं गरीबी के शिकार हैं।''3

अतः निर्धनतावश व्यक्ति असहाय एवं विवश हो जाता है एवं इसके अभाव में आर्थिक पिछड़ापन निम्न आय निम्न उत्पादन से है। निर्धनता के कारण व्यक्ति जीवन और अधिक दुष्कर बन जाता है। अतः गोविन्द मिश्र ने अपने साहित्य में आर्थिक चेतना के स्वर को मुखरित किया है।

मँहगाई आज के युग में सम्पूर्ण राष्ट्र की विकट समस्या है। समाज का कोई भी वर्ग इस समस्या के प्रकोप से अछूता नहीं। दैनिक उपभोग की वस्तुएँ आसमान छू रही हैं। समाज का सामान्य वर्ग तो सुविधापूर्ण जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता। एक युग ऐसा था जब लम्बे समय

शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 जनवरी 2014

तक पारिश्रमिक की दरे और वस्तुओं के मूल्य अपरिवर्तित रहते थे। उस समय सामान्य व्यक्ति की मानसिकता स्थिर रहने के कारण बाजार भाव के विषय में कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होती थी। इस स्थिरता का मूल कारण उस समय की अर्थव्यवस्था में गतिशीलता का अभाव था।

अतः भारत में मँहगाई बढ़ने लगी, बढ़ती हुई मँहगाई का सबसे अधिक प्रभाव मानव जीवन एवं अर्थव्यवस्था पर पड़ा है। गोविन्द मिश्र ने अपने उपन्यास 'हुजूर दरबार' में हरीश के माध्यम से यह कहलवाया है कि "वे मेरे भविष्य के बारे में बाते कर रहे थे लेकिन दोनों में से किसी को मेरी राय या इच्छा की तनिक भी चिन्ता नहीं थी।"4

लेखक के शब्दों में- "आज की अर्थ व्यवस्था महंगाई के कारण इतनी निर्मम और निस्पृह हो गयी है कि व्यक्ति के महत्व का एकदम लोप हो गया है।"5

इस प्रकार गोविन्द मिश्र जी ने अपने साहित्य में मँहगाई की समस्या को पूर्ण रूप से दर्शाया है और आर्थिक परिवेश के स्वरूप को अत्यन्त ही गहराई से चित्रित किया है। गोविन्द मिश्र जी ने अपने साहित्य में अशिक्षा को भी एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में दर्शाया है। यह एक शाश्वत समस्या है जिसे गोविन्द मिश्र ने साहित्य में उभारा है। अर्थ के अभाव में गाँवों के एवं निम्न वर्ग के बच्चे अशिक्षित रह जाते है। लेखक के शब्दों में- "निम्न वर्ग के लिए पुस्तक खरीद कर पढ़ना एक स्वप्न सा है।"6

अतः धनाभाव के कारण शिक्षा के प्रति उनकी इच्छा शक्ति क्षीण हो जाती है। परिणामतः इच्छा और योग्यता होने पर भी अर्थाभाव के कारण निम्न वर्गीय गाँवों के बच्चे अशिक्षित रह जाते है। अतः अर्थाभाव निम्नवर्गीय बच्चों की प्रतिभा के समुचित विकास में पग-पग पर बाधक बनता है। अतः आर्थिक तंगी के कारण अशिक्षा एक महत्वपूर्ण समस्या बनी हुई है। इस प्रकार वर्ग वैषम्य शहरीकरण, वर्ग विभाजन प्रदर्शनप्रियता, एवं मार्क्सवादी विचारधारा आदि आर्थिक समस्याओं के अन्तर्गत आते हैं।

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि गोविन्द मिश्र ने अपने कथा साहित्य में अर्थ एवं मानव के पारम्परिक सम्बन्ध को सूक्ष्मता से देखा तथा परखा है आर्थिक समस्याओं से जुड़े विभिन्न पहलू इनके कथा साहित्य में चित्रित हुए है। आर्थिक संकट, निर्धनता एवं धनाभाव के कारण सामाजिक सम्बन्ध बनते व बदलते हैं धन की बहुलता में खून के रिश्ते अपना अलग संसार बसा लेते हैं। गोविन्द मिश्र ने अपने कथा साहित्य में अर्थ एवं उसका महत्व मानव जीवन एवं अर्थ बेरोजगारी, मँहगाई निम्नजीवन स्तर एवं गरीबी प्रदर्शन प्रियता एवं आर्थिक संघर्ष आदि का मार्मिक चित्रण किया है। साथ ही शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध सर्वहारा वर्ग के क्षोभ और विद्रोह की चेतना को वाणी देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ

1 गोविन्द मिश्र सृजन के आयाम, सं चन्द्रकांत बांदिवडेकर, वाणी प्रकाशन दिल्ली पृ. सं 61

2 नरेशा मेहता के कथा साहित्य में मध्यमवर्ग, डॉ. जयकरण, संजय प्रकाशन नई दिल्ली पृ. सं 147

3 उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यासों में मध्यवर्ग, डॉ. कविता भट्ट, क्लासिक पब्लिकेशन्स जयपुर पृ. सं. 327

4 गोविन्द मिश्र की कहानियों में ऊर्ध्वगामी चेतना, सं चन्द्रकांत बांदिवडेकर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पृ. सं. 273

5 लाल पीली जमीन, गोविन्द मिश्र वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. सं. 90

6 लाल पीली जमीन, गोविन्द मिश्र वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. सं. 91

7 हुजूर दरबार, गोविन्द मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पृ. सं. 126

8 हुजूर दरबार, गोविन्द मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पृ. सं. 128

9 सृजन यात्रा, गोविन्द मिश्र सं. उर्मिला शिरीष, मध्यप्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति भोपाल पृ. सं. 21